ISSN 2320-4443

परामर्श

(हिन्दी)

खण्ड ३१ अंक १-४
दिसंबर २०१० - नवंबर २०११
भारतीय सौर मार्गशीर्ष - कार्तिक शके १९३२-३३
प्रकाशन वर्ष - नवंबर, २०१७

दर्शनशास्त्र विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय प्रकाशन

अनुग्रह का स्वरूप

डॉ. अखिलेश्वर प्रसाद दुबे

भारतीय चिन्तन/दर्शन की विशेषता कर्मफल सिद्धान्त है। जब हमें ईश्वर से स्वयं के अपृथकत्व का ज्ञान हो जाता है, तब जीवन के हर क्षण में जो भी कर्मों का फल प्राप्त होता है, वह अनुग्रह है। सर्वव्यापक ईश्वर अपने भक्त की उपासना से प्रसन्न होकर भक्त के हृदय में निवास करता है। शंकर के अनुसार निराकार होने पर भी वह अपने उपासकों पर अनुग्रह करने के लिए भाँति-भाँति के आकार धारण करता है। गीता की यह मान्यता है कि भक्त सारे कार्य ईश्वर को अर्पित करता है, उसकी शरण में जाता है[१] और उसके प्रसाद (अनुग्रह) रूप में परम पद को प्राप्त करता है। प्रपत्ति (पूर्ण समर्पण) और शरणागति भक्ति के आवश्यक अंग हैं और अनुग्रह (Grace) भक्ति का आधारभूत सिद्धान्त है।

साधारणतः 'अनुग्रह' का अर्थ कृपा होता है जिसका सीधा सम्बन्ध ईश्वर कृपा है। ईश्वर (अद्वैत) ही जीवों का पोषक और जीवन की हर उस घटना का जिसका हम कर्मफल रूप में सामना करते हैं, और कुछ नहीं उनका अनुग्रह ही है। वही अनुग्रहपूर्वक हमें अच्छे कर्मों के परिणामस्वरूप बंधन मुक्त कर मोक्ष प्रदान करता है।

'अनुग्रह' शब्द कृपा पर्याय न होकर उपकार का समानार्थक है जिसका कर्ता कारक न होकर उपकारक या अनुग्राहक कहा जाता है। जैसे - घट के देखने में चक्षुरिन्द्रिय को न्याय में करण कारक माना गया है किन्तु प्रकाश करणरूप असाधारण एवं सव्यापार कारण न होकर अनुग्राहक रूप साधाण कारण या उपकारक है। प्रकाश के होने पर ही चक्षुरिन्द्रिय की सक्रियता बनती है, अतः वह उसका अनुग्रह करता है। कुमारिल ने इसी दृष्टि से कहा है –

अनुग्रहाच्च धर्मत्वम्। (श्लोक, चोदना २४३)[२]

अनुग्रह के कारण यज्ञादि को धर्म कहा जाता है। सहकारी धर्म से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है जिसमें कर्ता पुरुष है। धर्म केवल अनुग्राहक है। इसी दृष्टि से शालिकनाथ मिश्र ने कहा है –